Published in: Hindi Atmakathae: Sandarbh aur Prakruti, Ed. By Shyamsundar Pandeya. Dnyan Prakashan, Kanpur. 2015; 266-276.

दलित स्त्री और 'मेरा बचपन मेरे कंधे पर'

- बिपिन तिवारी

दलित समाज सामाजिक सोपानक्रम में सबसे निचले स्तर पर जीवन जीता है। वह शोषण के दो रूपों को झेलता है पहला, अपनी जाति को लेकर दूसरा समाज में अपनी स्थिति को लेकर। जबकि दलित स्त्रियां शोषण के इन दो रूपों को झेलने के साथ-साथ एक और शोषण का शिकार होती हंै, वह है पुरुष सत्ता का शोषण। पुरुष सत्ता का शोषण ठीक उसी तरह का है जैसे कि एक उच्च वर्ग के पुरुष का होता है। '...हर पुरुष के घर में एक हांड़-मांस की एक स्त्री के रूप में इसका अस्तित्व है, यह शक्ति किसी मोची-धोबी के पास भी उतनी ही है, जितनी किसी राजा महाराजा के पास, और यह मामला कुछ ऐसा है कि इसमें शक्ति की इच्छा सबसे ज्यादा होती है-क्योंकि जो लोग हमारे निकट होते हैं उन्हीं पर शक्ति प्रदर्शन का सबसे ज्यादा आनंद आता है और उन्हीं की स्वतंत्रता हमारी पसंद नापसंद में दखलंदाजी कर सकती है.....।'[1] दलित स्त्रियां भी इसी प्रताड़ना का शिकार होती हैं। दलित समाज में पुरुष अपनी स्त्रियों के साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा मालिक अपने दास के साथ करता है। वह हर तरह से उस पर पूरा अधिकार चाहते हंै। 'पुरुष स्त्रियों से सिर्फ आज्ञा पालन की इच्छा नहीं रखते, वे उनसे भावनाएं भी चाहते हैं, कुछ बहुत कठोर अपवादों को छोड़कर, पुरुष अपनी स्त्रियों को एक बाध्य गुलाम की तरह नहीं बल्कि एक इच्छुक गुलाम की तरह रखना चाहते हैं, सिर्फ गुलाम नहीं, बल्कि पसंदीदा गुलाम, इसलिए उनके मस्तिष्कों को बंदी बनाए रखने के लिए उन्होंने सारे संभव रास्ते अपनाए हैं, अन्य सभी गुलामों के मालिक आज्ञाकारिता बनाए रखने के लिए अपने खुद के या धर्म के भय का इस्तेमाल करते हैं, पर चूंकि स्त्रियों के मालिक सिर्फ आज्ञाकारिता नहीं चाहते थे, इसलिए उन्होंने शिक्षा की पूरी शक्ति को इस उद्देश्य में लगा दिया, सभी स्त्रियां बचपन से ही यही पढ़ते सीखते हुए बड़ी होने लगीं कि उनके लिए एक आदर्श चरित्र पुरुष के चरित्र के बिल्कुल उलट हैः इच्छा शक्ति का अभाव, अपनी भावनाओं पर नियंत्रण, पुरुष सत्ता के आगे समर्पण, और दूसरों के नियंत्रण के अनुसार चलने-जीने वाला आचरण, हर नैतिकता स्त्री से यही कहती फिरती है...,।[2] यह पूरा का पूरा समाज ही ऐसा है। दलित समाज का पहले से ही खूब शोषण किया जाता रहा है। इसलिए वह अपनी स्त्रियों पर पूरा आधिपत्य करना चाहते हैं। इसीलिए दलित समाज में स्त्रियों के शोषण के कई रूप हैं। दलित आत्मकथाएं इस सच्चाई को बयान करती हैं। शोषण का यह चक्र इतना गहरा है कि इससे हर स्त्री को गुजरना पड़ता है। मामला यह किसी एक स्त्री का नहीं है और न ही किसी एक 'खास स्त्री' का। यहां तो पूरी की पूरी पुरुष मानसिकता से संघर्ष चल रहा है। जिसका शिकार कभी पंडित रमाबाई होती है तो कभी गोदान की धनिया तो कभी श्यौराज सिंह बेचैन की मां मुखी। अंतर यहां बस इतना है कि उच्च वर्ग की स्त्रियां कुल की इज्जत, मर्यादा के नाम पर घुटती रहती है और पति के आभाषी सुख समृद्धि में जीती रहती हंै। वह उनके खिलाफ अपनी आवाज

उठा भी नहीं पाती है। जबकि दलित स्त्रियां अपने पुरुष के अत्याचारों के खिलाफ खड़ी हो जाती है। दरअसल उच्च वर्ण की स्त्री को मान-मर्यादाओं के इतने चक्र-व्यूह में फंसा दिया जाता है कि वह उसी में उलझकर रह जाती है। वह तो इस समाज द्वारा गढ़े गये मानदण्ड के आधार पर ही अपना जीवन जीती रहती है। जबकि दलित स्त्रियां पुरुषों के साथ-साथ श्रम करती है। जिस कारण उनका अधिकार घर के निर्णयों में भी बराबरी का बन जाता है। हालाकि यह अधिकार सामान्य तरह से दलित पुरुष समाज ने स्त्रियों को ही नहीं दिए हंै। दलित स्त्रियों ने इसके लिए लंबी लड़ाई लड़ी है। दलित स्त्रियां अपने पति पर पूरी तरह आश्रित नहीं है, इसलिए वह इस पुरुष सत्तात्मक समाज के दांव-पेचों को आसानी से समझ जाती हैं। एक बात यहां गौर करने वाली है कि स्त्री के सम्बन्ध में पुरुष समाज से लेकर धर्मगं्रथों तक में स्त्री को एक ऐसे हिंसक जीव के रूप में दिखाया गया है कि जैसे वह कोई बनैला हिंसक जानवर है, जिसको कब्जे में करना बहुत जरूरी है। एक बार जरथुस्त्र एक बुढ़िया से पूछता है, ''बताओ, स्त्री के बारे में सच्चाई क्या है? '' वह कहती है, ''बहुत-सी सच्चाइयां ऐसी हैं जिनके बारे में चुप रहना ही बेहतर है। हां अगर तुम औरत के पास जा रहे हो तो अपना कोड़ा साथ ले जाना मत भूलना।''[3] यानी इस बात को धर्मग्रंथो से लेकर हर जगह प्रचारित किया गया। किसी भी धर्म में यह व्यवस्था नहीं की गई है कि स्त्री और पुरुष समान है। हिंदू धर्म में पुरुष श्रेष्ठ है। इस व्यवस्था में पुरुष भगवान है। जबकि पुरुष की नजरों में स्त्री कामकला के अतिरिकत कुछ नहीं है। जिस पर वह हमेशा अपनी नजर बनाए रखता है कि कहीं भी वह गलत रास्ते पर अपना कदम बढ़ा न ले। स्त्री का पालन-पोषण एक अलग ही मानसिकता में किया जाता है। स्त्री को जन्म से ही इस बात का एहसास कराया जाता है कि वह पुरुष समाज से कमतर हैं। राजेन्द्र यादव कहते हैं-'स्त्री हमारा अंश और विस्तार है। वह हमारी ऐसी जन्मभूमि है जिसे हमने अपना उपनिवेश बना लिया है। हमारी सोच और संस्कृति के सारे सामन्ती और साम्राज्यवादी मूल्य उपनिवेशों के आधिपत्य और शोषण को जायज ठहराने की मानसिकता से पैदा होते हैं। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दुनिया भर में जो उपनिवेश भौतिक और मानसिक रूप से स्वतंत्र हुए उनमें 'स्त्री' नाम का उपनिवेश भी है। दलित हमारे घरों और बस्तियों से बाहर होता है। स्त्री हमारे भीतर होती है, इसलिए उसका संघर्ष ज्यादा जटिल है।'[4] स्त्रियों के विरोध में ही पूरी व्यवस्था है।वह कहीं भी पुरुष के बराबर स्त्री को स्वतंत्रता देने की हिमायत नहीं करता है। वह हमेशा इस बात से डरता रहता है कि कहीं ऐसा न हो कि सारी चालबाजियां उलट जाएं। लिहाजा कभी परंपराओं के नाम पर तो कभी धार्मिक रूढ़ियों के नाम पर उनका शोषण किया जाता रहा है। इस शोषण का शिकार पूरा स्त्री समाज रहा है। माना जाता है 'कि दुनिया अगर चार पहाड़ों के तले पिस रही है तो औरतों पर पांच पहाड़ों का बोझ है-पांचवा पहाड़ पुरुष सत्तात्मक विधान का है।[5] दलित स्त्रियों का शोषण और भी गहरा है। कई बार उनका शोषण तो शरीर के स्तर तक पहुंच जाता है। दरअसल यह समाज किसी भी रूप में स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व स्वीकार नहीं कर पाता है। ऐसे में जैसे ही कोई स्त्री स्वतंत्र होने का प्रयास करती है तो उसे किसी न किसी घेरे में कैद कर दिया जाता है। इस पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री के लिए स्वतंत्र होने का एक ही मात्र रास्ता है कि वह वेश्या बन जाए। इसके अतिरिक्त उसके पास कोई रास्ता नहीं है। 'धर्म और नैतिकता की आड़ में सबसे ज्यादा अत्याचार औरतों पर ही हो रहे हैं। भूलना नहीं चाहिए कि धर्म के तालिबान हर युग में औरत की नाकेबन्दी करते आए हैं।'[6]

यह बात पूरे समाज पर लागू होती है। कोई आदमी चाहे कितना भी कमजोर क्यों न हो उसके भीतर अपने से नीचे के व्यक्ति और खासतौर से अपनी पत्नी पर अपना रौब-दाब जमाने की तीव्र आकांक्षा होती है। विवाह संस्था उसे इस बात का पुख्ता अधिकार भी दे देती है।[7] यह प्रवृत्ति दलित समाज के पुरुषों पर भी उतनी ही सच्चाई से लागू होती है। दलित समाज वैसे तो इस व्यवस्था में खुद शोषण का शिकार रहा है लेकिन स्त्रियों के मामले में वह भी उसी तरह की मानसिकता से ग्रस्त रहा है जिस तरह की मानसिकता का शिकार उच्च वर्ण रहा है। बेचैन की आत्मकथा के माध्यम से कहें तो बात स्पष्ट हो जायेगी। बेचैन की मां मुखी, अपने पति की मृत्यु के बाद जिस तरह से अपने बच्चों को पालती है, वह अपने में संघर्ष की एक मिसाल है। मुखी के पास न तो सम्पत्ति है और न ही और किसी और का सहारा। ऐसे में वह जगह-जगह भटकती है। कभी वह सरदारों के खेतों पर जाकर काम करती है और कभी दिल्ली में मजदूरी करती है। मुखी अपनें इस संघर्ष को कहीं भी अतिरंजित करके नहीं बताती है। जबकि उच्च वर्ण की स्त्री उसे एक संघर्ष की महागाथा के रूप में चित्रित करती है। दिल्ली में मुखी जहां अनाज साफ करने जाती थी, उसकी मालकिन कहती है ''सूरजमुखी औरत में हिम्मत होनी चाहिए।'' विधवा तो मैं भी हुई थी। पर मैंने विधवा होकर भी अपने बच्चों को डाॅक्टरी और इंजीनियरिंग में भेज दिया। पर तुम गांव की औरतें बुजदिल होती हो। हमेशा मर्द पर ही निर्भर रहती हो। अपनी खुद्दारी को पहचानती ही नहीं हो।'' मुखी इसका जो जवाब देती है वह गौर करने लायक है। ''जिस स्त्री के लिए जीविका के साधन सुलभ होते है और जो हर तरफ से लाचार हारी हुई होती है उन दोनों की परिस्थितियों में गहरा अंतर होता है। वे दोनों आत्मनिर्भरता या संकट में साहस दिखाने के एक जैसे दावे नहीं कर सकतीं। भूखे बच्चों का पेट केवल हिम्मत से नहीं भरा नहीं जा सकता। बिना पैसे के बच्चा, डाॅक्टर, इंजीनियर तो क्या चपरासी भी नहीं बन सकता।'[8] मुखी सामाजिक व्यवस्था के इस अंतर को सापफतौर से कह देती है।

गौर से देखा जाय तो यह बहुत कड़वी सच्चाई है। लेकिन इस बात को दूसरे फ्रेम में ही रखकर देखा जाता रहा है। संपत्ति एक ऐसी सच्चाई है जिसके बिना आज की तारीख में जिंदगी जीना असंभव तो नहीं, पर कठिन जरुर है। सामाजिक व्यवस्था के इतिहास पर यदि गौर किया जाए तो यह तथ्य ऐतिहासिक रूप से सत्य है कि उत्तर भारत के दलित तबके के पास सम्पत्ति बहुत कम रही है।[9] वह भी कैसी रही है इसकी तो एक अलग कहानी हैं। जमीन कहीं पट्टे में मिली है तो कहीं किसी दूसरे रूप में। जो जमीनें मिली भी हैं वह किसी न किसी उच्च वर्ण के आदमी के कब्जे में रहती हैं और बहुत बार तो अपने ही घर का कोई सबल आदमी दूसरे की जमीन हड़प कर बैठ जाता है। ऐसे में दलित विधवा का जीवन और वह भी चार बालकों की परवरिश के साथ जीना कितना कठिन होता है, इसकी सहज कल्पना की जा सकती है। मुखी इसी संपत्ति के अभाव में जगह-जगह भटकती है। मुखी यह सब मजबूरी में करती है। ''बेटा, तेरे बाप के पास दो-चार बीघा हंू उपजाऊ जमीन होती तो मैं एक डग हूं गाम ते बाहर नाय धत्ती। आदमी की नांय मोइ तुम्हारे पेट कूं रोटी की जरूरत है।''[10]

मुखी का संघर्ष इसी रोटी को लेकर है। इसीलिए वह पहले रामलाल के घर बैठ जाती है और बाद में पाली मुकीमपुर के भिकारी के घर। मुखी का संघर्ष दो तरफा है। एक तरफ अपने बालकुन के पेट भरने की चिंता है तो दूसरी अपनी शारीरिक जरूरतें हैं। इसीलिए वह सबकुछ ऊंचा-नीचा सोचकर अपने कदम घर से बाहर निकालती है। वह अपने

कदम को लेकर जानती भी है कि लोग उसके बारे में क्या-क्या कहते हैं? लेकिन कोई दूसरा रास्ता भी तो नहीं है। वैसे दलित समाज अपेक्षाकृत खुला समाज है। यहां विवाह की उतनी रूढ़ियां नही हैं, जितनी ब्राह्मणों या अन्य उच्च वर्ण के लोगों में पाई जाती हैं और न ही यहां स्त्री-पुरुष सेक्स संबधों को लेकर उतनी जकड़बंदियां। यहां पर यदि किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो जाती है तो वह आसानी से किसी दूसरे पुरुष के घर बैठ जाती है और उसके साथ यदि न निपट पाए तो उसको छोड़कर किसी तीसरे के घर बैठ सकती है। हम यहां घर बैठने शब्द का प्रयोग इसलिए कर रहे है क्योंकि इस समाज में पहले पति के शादी में ही धूमधम होती है बाद में सिर्फ अपने हितों के हिसाब से किसी पुरुष के साथ रहना शुरू कर दिया जाता है। इसमें न तो बिरादरी को भोज-भात देने की जरूरत न किसी पंडित से मंत्र पढ़वाने की जरूरत। लेकिन गांव के लोगों की नजर में पहले पति से बच्चों की कोई अहमियत नहीं रहती। दूसरा पति भी उन बच्चों के प्रति कोई लगाव नहीं रखता। गांव के लोग बात-बेबात में इस बात का अहसास कराते रहते हैं। यह सब अकेले मुखी को झेलना पड़ता है। कहने को तो दलित समाज खुला समाज है और कुछ हद तक है भी। वर्तमान समय को देखते हुए कहे तो कहा जा सकता है कि यहां भी वही सारी बुराइयां पनपनी शुरू हो गई है जो कि उच्च वर्ण में पाई जाती हैं। हम यहां इस लेख में बेचैन की आत्मकथा के मार्फत ही दलित स्त्री जीवन का मूल्यांकन करने की कोशिश करेंगे। बेचैन की आत्मकथा में मुखर स्त्रियों में श्यौरौज सिंह बेचैन की मां मुखी ही है। इसके अतिरिक्त अन्य स्त्रियां जो आई हंै वह उतना प्रभावी रूप में नहीं हैं। हम यहां इस लेख में पूरी कहानी कहना नहीं चाहते अपितु दलित समाज में स्त्रियों की स्थिति कैसी है? इसका इस आत्मकथा के माध्यम से एक खाका प्रस्तुत करनी की कोशिश करेंगे। मुखी श्यौराज के पिता राधेश्याम की पत्नी है जो बाइस साल में विधवा हो गई है। मुखी के सामने चार बच्चों को पालने का भार है। घर में संपत्ति के नाम पर बमुश्किल रेह-ढूह वाला बीघा भर खेत होगा। उसमें भी कई बंटाईदार। अंधे बाबूराम ताऊ, अंधे बीधे बब्बा और उसमें ये छोटे-बडे पांच लोग मुखी के साथ। सवाल यहां जिंदा रहने का है कि कैसे भी इन पांच बालकुन को पाला जाए। वह राधे को याद करके रोती है-''तेरी बगिया कूं कौन संवारे गोरे माली रे...बिन रूत के तोरे बाग उजरि गओ फूल बिखरि गए रे!''[11]

राधे की इस उजड़ी हुई बगिया को संवारने की जिम्मेदारी अकेले मुखी पर है। इसीलिए वह पहले रामलाल के घर बाद मंंे पाली मुकीमपुर के भिकारी लाल के यहां चली जाती है। यहां सीधे से विवेचना की जाए तो मुखी का चरित्र अलग बन जाएगा। उसकी इमेज एक ऐसी दुश्चरित्र स्त्री की बनेगी जो कि अपने शरीर सुख के लिए ही सबकुछ कर रही है। मुखी जब रामलाल के घर बैठ जाती है तब बीधे बब्बा को बहुत खराब लगा था। वह लकड़ी टेकते हुए उसे वापस लाने गए थे। क्या कुछ नहीं कहा था बीधे बब्बा ने मुखी से? मुखी के पिता ने उनकी अपंगता का उपहास करते हुए वापस कर दिया था। ''मेरी बेटी की उमर अभी बीस-बाइस साल है। अभी उसने देखा क्या है? हम बामन बनिए तो हैं नांय और न हम चैधरी हैं, जहां जायदाद की कमाई बेटियां खाती रहें। हम चमार हैं। हमारे यहां यही होता है और फिर बेटी घर बैठी भी रहे तो किसके सहारे? क्या तुम्हारे घर में दो रोटी मिलने की कोई उम्मीद है? तुम तीनों भाई खुद ही दो-दो रोटियों को मोहताज हो। दो अंधे हो और एक लंगड़ा।....''[12]

मुखी ने अपने ससुर से सुबकते-सुबकते कहा था-''अब तुम सबर करो और भगवान तें जे ही दुआ करो।'' ''जे बालक पल जांई।''[13] इसीलिए वह रामलाल के साथ रहने लगती है। लेकिन मामला इतना आसान नहीं है। यहां भी वही पुरुषवादी सोच हावी है। कोई भी पुरुष किसी दूसरे के बच्चे को अपनाने के लिए तैयार नहीं हैं। न रामलाल न भिकारी लाल। भिकारी लाल तो सीधे-सीधे कहता है कि हम इनसे हर खुराक का दाम वसूल करेंगे। इनके बीच मुखी का संघर्ष है। एक तरफ नया स्वीकार किया हुआ पति है तो दूसरी तरफ अपने चार बच्चे, जिसमें एक की बिना दवा के मौत हो गई और बाकी तीन के पेट पालने हैं। हर आदमी अपने रक्तबीज से पैदा बच्चे की ही परवरिश करना चाहता है। यह एक ऐसी विडंबना है जिसको सबसे ज्यादा मुखी झेलती है। इस दोनों में से वह किसी एक को भी नहीं छोड़ सकती है। भिकारी इसीलिए श्यौराज और माया को भट्टे पर भेजकर उनसे उनकी खुराक के दाम वसूलना चाहता है। 'अब गे भट्टा पै जांगे और अपने खाये गयी रोटी-दाल कौ बदलौ चुकाएंगे।...''[14] मुखी के इस मानसिक संघर्ष को श्यौराज का पढ़ाई से तगड़ा लगाव और बढ़ा रहा है। कहने को तो यह कहा जाता है कि दलितों में किसी स्त्री के दूसरे आदमी के घर बैठने के साथ ही पहले पति से पैदा हुए बच्चों की समस्या हल हो जाती है। लेकिन वास्तविक सच्चाई कुछ दूसरी है। मुखी इसी संघर्ष में पिसने को मजबूर है। रामलाल का घर इसीलिए छोड़ दिया था कि वह भी श्यौराज के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता था। भिकारी का तो कहना ही क्या? वह तो कई रूपों में मुखी को प्रताड़ित करता है। भिकारी के तीन भाइयों के बीच अकेला लड़का रूपसिंह है। रूपसिंह जितना बाकी कामों में तेत उतना ही पढ़ाई में लद्धड़। मास्टर जी ने तो साफ-साफ कह दिया था-''सुनो भाई भिकारीलाल सच्ची, बात तो यह है कि तुम्हारा यह बड़ा लड़का रूपसिंह तो पढ़ाई में कोई रुचि नहीं लेता और ना ही किसी विषय में मेहनत करता है। छह-सात महीने में उसे पूरे अक्षर तक याद नहीं हो पाए हैं। वह ज्यादा समय कक्षा से गायब रहता है, परंतु तुम्हारा यह छोटा बेटा श्यौराज, पढ़ने में अच्छा है। यह पढ़ सकता है। आप इसे पढ़ाओ। यह होनहार है...''[15] यह बात भिकारी को बर्दाश्त नहीं है। इस बात को वह सीधे-सीधे नफरत के साथ कहता है। ''ससुरी, गे (यह) कलक्टर बनैगो, मास्टर की हूं निघा(निगाह) में ससुरी को तेज है, होनहार है, सारे सबद याद कर लए या ससुर ने। याकौ पेट मैं भरू और पढ़ गयौ तो सुख दैगो महतारी कूं। गै बिलौटा, खाइवे में नाकौ हैं और पढ़िवे मैं तेज हैं, कमाइवे कूं मरी परे है या पै। ऐसो 'हनुआ' लै आयी, जो मेरे लड़के से ज्यादा होशियार है।''[16] मुखी भिकारी के इन सब बातों को जानती है। वह इसीलिए श्यौराज को समझाती है। ''का तू जानत नांय है कै तू भिकरिया को सगो बेटा नांय है। जो तोय चों पढ़ावेगो? तू पढ़िवे की जिद नांय छोड़ेगो तो जे तेरे संग-संग हम सब को मारि-मारि के घर तें बाहर निकार देगो।''[17] वह भिकारी से अपने बच्चों के लिए पिटती रहती है। वह जानती है कि भिकारी जो उसके बच्चों से नपफरत करता है उसका कारण क्या है? वही वंश की शुद्धता का तर्क। जो बीमारी उच्च कुल के लोगों में भयानक रूप में पाई जाती है वह किसी न किसी रूप में यहां भी बनी हुई है। भिकारी तो अपने वीर्य से पैदा हुए वंश को ही श्रेष्ठ देखना चाहता है। ऐसे में वह श्यौराज की तेजी को कैसे बर्दाश्त कर सकता था? जिसका खामियाजा कभी श्यौराज को तो कभी मुखी को भुगतना पड़ता है। मुखी कहती है-''जो कारे पेट को आदमी है, जा को बेटा फेल है गओ तो मेरो सौराज न पढ़ जाय, जा मारें दारीजार ने किताबें जराई दईं। पर मैं मन मसोसि कें कह रही हूं, बंदे याद रखिए, जो सौराज जरूर पढ़ैगो। भगवान के घर देर है अंधेर नाय है, और तू कितनोऊं

जल मरि, तेरे चाहिवें ते रूपा नाय पढ़ि पावेगो।''[18] उसने श्यौराज से कह दिया था कि इसके सामने से चले जाओ और कहीं पढ़ि ले जाई। मुखी को इसी बात का दुख था कि हर मोड़ पर उसकी परीक्षा ली जा रही है। वह भिकारी के इस दोहरे चरित्र के बारे में कहा करती थी -''तोइ जैसे मगरमच्छ कूं जरूर सुरग देगी गंगा मइया?...[19] मुखी अपनी सहज बुद्धि से भिकारी के चरित्र का बारीक विश्लेषण करती है। मुखी का संघर्ष अपने परिवार को लेकर है बिल्कुल प्रेमचन्द के 'गोदान' उपन्यास के धनिया की तरह का है। धि्नया अपने परिवार की सुख समृद्धि के लिए ही सबसे लड़-भिड़ रही है। वह चाहे थानेदार हो या गांव के लोग या पति होरी। वह कहीं भी अपने लिए कुछ नहीं चाहती है, जो भी कुछ है अपने परिवार के लिए। 'धनिया को व्यक्तिगत रूप से अपने लिए कुछ नहीं चाहिए। उसकी अपनी न कोई व्यक्तिगत आकांक्षा है, न इच्छा। जो चाहिए वह होरी, गोबर के लिए-सामाजिक सम्मान, पारिवारिक सुख और शरीर मन का योग-क्षेम। इन्हीं पारिवारिक मूल्यों के प्रति समर्पित वह दबंग और दृढ़ है।'[20] धनिया कहीं भी नहीं कहती कि वह इस समाज में घुटन भरी जिंदगी जी रही है या उसका पति उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता है। ऐसे सवाल धनिया नहीं करती है। ठीक ऐसे ही मुखी है। मुखी अपने बच्चों को किसी भी तरह पालना चाहती है। इसी स्वार्थ में वह हर जगह ठगी जाती है लेकिन अपनी आस्था नहीं छोड़ती। वह सरदारों के यहां जब काम करती है तो वह सरदार के लड़के द्वारा मजदूरों की की बहू-बेटियों पर गलत निगाह डालने के कारण वह बाकी महिलाओं के साथ उसको मारने का प्लान बनाती है। क्या मजाल कि कोई किसी मजदूर स्त्री पर गलत नजर डाले? आखिर वह भी तो किसी की बहन बेटी हैं। मुखी अकेले ही दम पर अपनी बेटी माया की गंगावासी से शादी करती हैं। मुखी का दामाद को जब गले की बीमारी होती है उस स्थिति में भी गांव के लोग उसका शोषण करने से बाज नहीं आते हैं। ''राधे की बहू, जब अपने गांव में हम इतने बड़े सियाने मौजूद हैं। तो तू दिल्ली और कलकत्ता की बातें काए कूं कर रही है, का जो हमारी बेइज्जती नांय है? दूर-दूर के मरीज यहां आवत हैं और तू अपने दामाद कूं बाहर लै जाइगी? तू चाह रही है तो आज ही सांझ कूं खचेरा के घर में बैठक होइगी। बंगाली बाबा, सैयद बाबा और भोजपूर वाली चामुंडा आवेगी। गंगावासी की बीमारी बताइ दिंगे और देवता सब ठीक करि दिंगे।''[21] लेकिन यह सब तो मुखी को और गर्क में पहुंचाने के लिए पूजा के नाम पर किया गया। मेढ़े और मुर्गे का मांस प्रसाद के नाम पर सयाने साफ कर गए। मुखी को तो प्रसाद की एक बोटी तक नहीं मिली। जबकि इसी तरह के कर्मकाण्ड में उसके पति राधे की मौत हुई थी। राधे लगातार चिल्लाता रहा मों पर कोई चुडैल नांय है लेकिन सयानों ने एक न सुनी। राधे पर लगातार मार पड़ती रही और अंत में वह इसी मार में मर गया। इसके बावजूद मुखी इन सयानों पर विश्वास कर लेती है। मुखी इन सबकी करतूतों के बारे में जानती है लेकिन प्रत्यक्षः कोई आरोप नहीं मढ़ती और न ही किसी दैवीय शक्ति पर। गंगावासी की मृत्यु पर वह भगवान से सिर्फ अपनी मजबूरी कहने के लिए कहती है। ''तुम चले गये बेटा! हम कुछ नांइ करि पाए। बेटा, हमारो कोई वसु नांइ चलो। माफ करिओ। सुरग में भगवान तें हमारी मजबूरी कहिओ बेटा!...।''[22] एक तरफ मुखी की आस्था है और दूसरी तरफ इन सयानों की करतूते हैं जो किसी भी हालात में अपने स्वार्थ साधने से बाज नहीं आते। मुखी को अगर किसी से शिकायत है तो गरीबी से जिसके कारण ही वह यह सब झेेल रही है। गरीबी के कारण ही देश छूटा और गरीबी के कारण ही अपने परिवार से दूर जाना पड़ा। इन सबके बीच श्यौराज की पढ़ने की जिद। एक अकेली स्त्री जिसके पास न तो पति के

द्वारा छोड़ी गई सम्पत्ति है और न नया पति का कोई सहारा। सो कैसे वह कर सकती है? इस पर गौर से विचार करने की जरूरत है। मुखी श्यौराज की पढ़ाई का विरोध करती है। उसके सामने वर्तमान है। वह वर्तमान है परिवार को जिंदा रखने का, पेट पालने का। कैसे भी इन सबके पेट पल जाएं। इसी संदर्भ में मुखी की इस बात को समझना जरूरी है। मुखी कहती है- ''आज से मैं समजुंगी कि सौराज मरि गओ। मैंने एक बेटा पैदा ही नांय करो, मैंने नौ महीना अपनी कोख में एक पत्थर ढ़ोओ। आज से सौराज पूरी वस्ती कूं मरे के बराबर है। अब तूं मन में जो आवे सो करि। जब पढ़नि की उमरि रही तब पढ़ि नाय पाओ अब दुए रोटी को काम कन्न लाक भओ है तो मिस्त्री के औजार छोड़ि कें कलम चलावैगो। मैंने कब नाय पढ़ानो चाहो, जो इतना ही भाग वालो हो तो बाप काहे कूं मरि गओ तेरो? अब चार पैसा कमावन लाक भओ है तौ हमारो पेट भन्नो छोड़ि स्कूल के लालच में घर छोड़ि रओ है। तेरो जैसो दूसरो कोई निर्मोही होइगो जा दुनिया में? अब जहां मन आवे, चलौ जा। मैं सबुरि करि लिउंगी। जिन्दी रही तो देखउंगी तू कैसे पटवारी, मुंशी या सिपाही बनैगो?''[23] यानी ऐसी विपरीत परिस्थितियों में श्यौराज की जिद बहुत भारी पड़ रही थी। लेकिन मुखी एक बात तो जानती थी कि श्यौराज पढ़ना चाहता है लेकिन पढ़े तो कैसे? सवाल इस कैसे का है? माया की जब शादी हुई थी तो मुखी को इस बात का थोड़ा भरोसा जरूर हुआ था। परंतु वह भी जल्दी ही टूट गया। गंगावासी की मृत्यु हो गई। वर्तमान अब ज्यादा कठिन हो चला था। बहन माया बिधवा हो गई थी। उसको भी सहारे की जरूरत थी। इन सब परिस्थितियों के बीच एक अकेली मुखी थी। जिसे श्यौराज से बहुत उम्मीदें थी कि जब वह बड़ा हो जाएगा तो वह उन सबके पेट भरेगा। लेकिन वह भरोसा भी अब टूट रहा था, सो मुखी का श्यौराज के प्रति इतना अधिक निर्मम हो जाना कोई ऐसी बात नहीं है जिस पर मुखी को दोषी माना जा सकता है। दोेेेष यदि किसी का है तो वह है परिस्थितियों का। ऐसे माहौल में भी जब श्यौराज अपना रिजल्ट लेकर या ऐसे ही कभी भिकारी के घर चला जाता था तो भिकारी मुखी से मारपीट करने लगता था। मुखी यह सब जानती है लेकिन वह भी मजबूर है। एक तरफ मां की ममता है तो दूसरी तरफ पेट की आग। इसलिए मुखी ने श्यौराज से कह दिया था-''तू पढ़नों ही चाहतु है तो जा भिकरिया बन्दे की आंखिनु के सामने रहि के मत पढ़ि। बेटा तू कहीं और इंतजाम करि लै।....''[24] इस आत्मकथा में बाकी दलित स्त्रियां चाहे श्यौराज की बुआ हो, उसके गांव की मानती हो या गंगावासी की मां। सब मुखी की तरह मुखर नहीं हैं। सब उसी व्यवस्था के बीच रहते हुए शोषण का शिकार हो रही है। गावं की यह दलित स्त्रियां अपनी समस्या का समाधन बहुत सहज स्वाभाविक ढ़ग से करती हैं। वहां न तो किसी तरह का पुरुष समाज से कोई टकराव है और न ही अपने लिए कुछ करने की कामना। यहां स्त्रियां जो कुछ भी चाहती है वह अपने परिवार के लिए, अपने पति के लिए, पुत्र के लिए। इस बात की तह में जाएं में तो एक बात साफ हो जाती है कि दलित स्त्रियां अपने समाज में मुखर होने के बावजूद भी उसी बने बनाए सामाजिक प्रतिमानों में ही अपने परिवार की बेहतरी चाहती हैं। यह स्त्रियां कहीं भी इन सबके पीछे काम करने वाली असली शक्तियों पर कोई प्रश्न-चिहन नहीं खड़ा करती है। मुखी इसीलिए पहले रामलाल और फिर भिकारी लाल के घर बैठ जाती हैं वहीं गंगावासी की मां गांव के एक ठाकुर की खुले रूप से रखैल बनकर रहने लगती है। यह बात गांव के लोगों सहित उसके पति को भी पता है। लेकिन सब परिस्थितयों के मारे हैं। उसकी जाति बिरादरी ने उसके घर को छेक दिया है यानी बिरादरी से बाहर कर दिया है। उसका पहला कारण तो यह है कि ये लोग

चमड़ा रंगने का काम करते है और दूसरा, उनके घर की जनाना ठाकुर की रखैल बनी हुई है। यही वह बिरादरी है जब गंगावासी के पिता का पैर टूट गया था और वह विकलांग हो गया था, तब बिरादरी के किसी भी आदमी ने कोई मद्द नहीं की थी। लेकिन जब वह ठाकुर के घर बैठ गई तब सामाजिक मान-मर्यादा की बात करने लगे। दलित समाज में स्त्री का शोषण कई तरह से किया जाता है। यहां शोषण का रूप सिर्फ जातिगत नहीं है। 'निचले तबकों में उसका शोषण दुहरा है। वहां श्रम और सेक्स दोनों धरातलों पर उसका इस्तेमाल होता है। शहरी मध्यवर्ग में यह सारा खेल और उसकी जटिलताएं देह-केंद्रित हैं।...'[25]

मुखी का शोषण सिर्फ जाति-व्यवस्था के आधार पर नहीं किया जाता है अपितु उसका शोषण स्त्री होने के नाते भी किया जाता है। भिकारी जब मुखी को मारता-पीटता है तो कहता है जब से इंदिरा गांधी प्रधनमंत्री क्या बनी हर स्त्री अपने को इंदिरा गांधी मान रही है। वह श्यौराज से पूछती है कि कहीं जब वह किसी बड़े जानकार आदमी से मिले तो उससे यह जरूर पूछे कि इंदिरा गांधी ने औरतों को क्या दिया है? जिसको लेकर बात-बात पर भिकारी उसको प्रताड़ित करता है। दलित स्त्रियों में चाहे मुखी हो या कोई और सभी एक ही तरह के शोषण से गुजरने को मजबूर है। लेकिन यह बात जरूर है कि वह अपने पतियों की प्रताड़ना ऐसे सह नहीं लेती है बल्कि उसका पूरा प्रतिकार करती है। धनिया जहां थानेदार के सामने ही होरी के खिलाफ खड़ी हो जाती है वहीं मुखी पूरे समाज से टकराती है। मुखी विधवा है और अभी मुश्किल से बाइस बरस की है। ऐसे में आदमी उसकी शारीरिक जरूरत भी है लेकिन दूसरी तरफ समाज है जो इसकी एक अलग व्याख्या करता है। 'विध्वा क्या हुई, दो-दो खसमों के संग रहने के मजे ले रही है, चमरिया जो ठहरी।'[26] मुखी चुपचाप पंचायत में सिर नीचा किए बैठी रहती है। आरोेप और लांछन उस पर लगाए जाते रहते हैं। वहीं दूसरी एक घटना तब की है जब भिकारी मुखी को लेने राधे के घर आता है यानी मुखी अपने पहले पति के घर में है तब की बात है। गांव के लोग मुखी के ससुर से कहते है बीधे तुम्हारा दामाद आया है और भी बहुत कुछ। मुखी ने कहा था -''इसे भगा क्यों नहीं देता? पर भगावे कैसे तू बेशर्म है? गांव बस्ती कछू कहे तो पर असरु कहां होतू है?...[27] समस्या यहां समाज के तानों और वास्तविक जिंदगी के संघर्षों के बीच की है। एक तो भिकारी मुखी का पति है और दूसरे उन दोनों को एक दूसरे की जरूरत है। दूसरी तरपफ अकेले श्यौराज है जो समाज के तानों पर यदि गौर करते हुए भिकारी को भगा भी दे तो सवाल है अपनी मां के पेट भरने का। आत्मकथाकार ऐसे में सिर्फ इतना ही कह पाता है कि जब भगाना ही था तो बुलाया ही क्यों था? इसका जवाब किसी के पास नहीं हैं। यह सवाल पूरे समाज पर है जो अपने आदर्शवाद की एक पोटली बनाए हुए रखे हुए है और उसी के हिसाब से लोगों के चरित्रों का मूल्यांकन करता रहता है। इन पैमानों पर लोगों की शारीरिक जरूरतों के लिए कोई जगह ही नहीं है। ऐसे में दलित समाज में स्त्री जीवन का मूल्यांकन करते समय इन सब अंतविरोधों का जिक्र करना और उसी हिसाब से निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए? नहीं तो निष्कर्ष आभाषी ज्यादा होंगे।

संदर्भ

[1] मिल, जाॅन स्टुअर्ट, स्त्री और परधीनता('द सब्जेक्शन आॅफ़ विमेन')प्रकृति, शक्ति और भूमिका से जुड़े प्रश्न, अनुवाद एवं प्रस्तुति युगांक धीर, संवाद प्रकाशन मुंबई: मेरठ, संस्करण, फरवरी, 2008, पृष्ठ 21

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ, 25-26

[3] यादव, राजेन्द्र, आदमी की निगाह में औरत, (नीत्शेः 'जरथुस्त्रा उवाच' से) राजकमल प्रकाशन, दिल्लीः पटना, पहला संस्करण, 2001, पहली आवृत्ति, 2002, पृष्ठ, 13

[4] उपर्युक्त, भूमिका

[5] उपर्युक्त, आवरण पृष्ठ

[6] उपर्युक्त, 'धर्म और नैतिकता की आड़ में सबसे ज्यादा अत्याचार औरतों पर ही हो रहे हैं। भूलना नहीं चाहिए कि धर्म के तालिबान हर युग में औरत की नाकेबन्दी करते आए हैं।' आवरण पृष्ठ

[7] मिल, जाॅन स्टुअर्ट, स्त्री और परधीनता('द सब्जेक्शन आॅपफ़ विमेन') प्रकृति, शक्ति और भूमिका से जुड़े प्रश्न, अनुवाद एवं प्रस्तुति युगांक धीर, संवाद प्रकाशन मुंबई: मेरठ, संस्करण, फरवरी, 2008, में लिखते हैं-'...आज की विवाह संस्था जिस तरह एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के जीवन पर पूरा वर्चस्व दे देेती है-उस व्यक्ति पर जो उसके साथ रहता है और हमेशा उसके सामने उपस्थित है-तो उस पर अधिकार जताने और उसे दबाते चले जाने की स्वार्थता अपने सभी बांध तोड़कर पूरी निर्बाधता के साथ बहने लगती है, अपने मूल चरित्र के सारे आवरण हटाते हुए वे इन संबंधों में से वे तमाम स्वतंत्रताएं लेने लगता है, जिन्हें अपने दूसरे सामाजिक रिश्तों में वह ढ़ककर और दबा कर रखना जरूरी समझता है।' पृष्ठ 47

[8] बेचैन, श्यौराज सिंह, मेरा बचपन मेरे कन्धों पर, आत्मकथा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ, 240

[9] 'अनभै सांचा' साहित्य और संस्कृति की त्रैमासिक पत्रिका(दलित विमर्श पर केंद्रित विशेषांक) संपादकः द्वारिका प्रसाद चारुमित्र अक्टूबर-दिसम्बर, 2008 अंक 12 श्रीनिवास, एम. एन. 'व्यवस्था के रूप जाति का अंत' लेख में लिखते हैं-'जिस जाति के पास गांव में ज्यादा जमीन होती थी और जो तादाद में भी ज्यादा होती थी वह गांव के मामलों में भी दबदबा रखती थी। हरेक को उनका वर्चस्व मानना पड़ता था। धर्मिक तौर पर ऊंची मानी जाने वाली जातियों को भी। ग्रामीण भारत के ज्यादातर हिस्सों में ऐसी जातियां मौजूद थीं और मैंने इन्हें 'वर्चस्वकारी' जातियां कहा है। पारम्परिक रूप से अछूत जातियां आमतौर पर भूमिहीन हुआ करती थी। सारे भारत में ऐसा ही था। अछूतों की भूमिहीनता ने उनकी गरीबी और बदहाली को बढ़ाया और उनके शोषण को आसान बनाया।' पृष्ठ 31

[10] बेचैन, श्यौराज सिंह, मेरा बचपन मेरे कन्धों पर, आत्मकथा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ, 141

[11] उपर्युक्त, पृष्ठ, 22-23

[12] बेचैन, श्यौराज सिंह, मेरा बचपन मेरे कन्धों पर, आत्मकथा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ,34-35

[13] उपर्युक्त, पृष्ठ,35

[14] उपर्युक्त, पृष्ठ, 73

[15] उपर्युक्त, पृष्ठ, 55

[16] उपर्युक्त, पृष्ठ, 56

[17] उपर्युक्त, पृष्ठ, 65

[18] उपर्युक्त, पृष्ठ, 57

[19] उपर्युक्त, पृष्ठ, 72

[20] यादव, राजेन्द्र, आदमी की निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन, दिल्लीः पटना, पहला संस्करण, 2001, पहली आवृत्ति, 2002, पृष्ठ,

[21] बेचैन, श्यौराज सिंह, मेरा बचपन मेरे कन्धों पर, आत्मकथा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ, 113

[22] उपर्युक्त, पृष्ठ,130

[23] उपर्युक्त, पृष्ठ, 312

[24] उपर्युक्त, पृष्ठ, 330

[25] यादव, राजेन्द्र, आदमी की निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन, दिल्लीः पटना, पहला संस्करण, 2001, पहली आवृत्ति, 2002, पृष्ठ, 43

[26] आत्मकथा, पृष्ठ, 51

[27] उपर्युक्त, पृष्ठ, 47